

पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन

श्री समयसार कलश २७१, ता. २९-७-१९९०

प्रवचन नंबर ५१६

यह श्री समयसार जी परमागम शास्त्र है। इसका अंतिम परिशिष्ट नाम का अधिकार (चलता है)। परिशिष्ट यानि श्री समयसार का,

मुमुक्षु:- भाई हिंदी में लो.... क्षमा करना भाई...

उत्तर:- हिन्दी में लेंगे....याद करवा देना....नहीं क्षमा की बात नहीं है।

यह समयसारजी परमागम शास्त्र है। इसका लास्ट में अंतिम परिशिष्ट अधिकार (है)। अमृतचंद्र आचार्य भगवान ने इसकी विस्तार से टीका की है। उसमें परिशिष्ट का अर्थ है कि जो (पहले) कहा हुआ, वो भी कहूँगा और जो नहीं आया इतनी बार, वो भी मैं ऐड (add) करके परिशिष्ट में कहूँगा। उसमें समयसार का २७१ नंबर का कलश है जो अमृतचंद्र आचार्य भगवान ने स्वतंत्र बनाया है। उसके ऊपर अपने उपकारी पूज्य गुरुदेव अनुभवी पुरुष थे, (उन्होंने) उसके ऊपर व्याख्यान दिया है। उन व्याख्यान (के) "प्रवचन रत्नाकर" ११ भाग छप गए हैं, गुजराती में। हिंदी में भी थोड़े भाग निकल चुके हैं, अनुवाद में। तो उसमें ११वें भाग में उसका सब विस्तार से व्याख्यान है। उस व्याख्यान की कॉपी टू कॉपी, इधर बुक में छपवाया है। इधर लिखा था, वो छपवा दिया उसने।

तो उसके (कलश २७१ के) ऊपर गुरुदेव के जो व्याख्यान हैं, उस व्याख्यान के ऊपर व्याख्यान नहीं होता है। व्याख्यान का स्पष्टीकरण होता है कि गुरुदेव ने क्या कहा (है) इसमें। हम तो कम बुद्धिवाले हैं, थोड़े। तो ज़्यादा स्पष्टीकरण करने से ख्याल आता है कि ज्ञानी के हृदय में क्या भाव थे और क्या कह दिया (उन्होंने), वो अनुभव की प्रक्रिया है। आत्मा के अनुभव की विधि इसमें लिखी है। जैसे सोना बनाने की विधि किसी को मिले तो रात-भर वो अभ्यास करके फज़ल में (तुरंत) वह बना लेवे। ऐसे परमात्मा बनने की, यानि आत्मा के अनुभव करने की विधि क्या है, वो इसमें २७१ नंबर के कलश में (लिखी हुई) है। उसके ऊपर व्याख्यान हुए हैं, गुरुदेव के।

अनंत-अनंत-अनंतकाल से जीव को सम्यग्दर्शन (की प्राप्ति नहीं हुई)। अनंत-अनंतकाल से आत्मा (को) सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई है। मिथ्यादर्शन की प्राप्ति तो अनंतकाल से है। उसका दुःख अनंत-अनंत, अनंत-अनंतकाल से वो भोगता है। मिथ्यात्व का फल दुःख है। तो अपने किसी भाग्य के योग से, अपनी योग्यता से, इस पुरुष का जन्म हुआ। और उसके हाथ में कुंदकुंद आचार्य भगवान का समयसार, परमागम शास्त्र, उनके हाथ में आ गया। देखते ही उस पुरुष ने (हीरे को पहचान लिया), जौहरी था। देखते ही, अंदर से आया भाव कि यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है। उसका पूरा अंतर में अध्ययन करके अनुभव किया। अनुभव करके इस बात (पर) उन्होंने ४५ साल तक व्याख्यान किया।

तो अनंत-अनंतकाल से जीव की भूल एक ही है। भूल दो हैं। अज्ञान (तो) एक है उसका दो भेद

है। अज्ञान तो एक है, उसका दो प्रकार है, अज्ञान का। एक तो ऐसा है कि आत्मा स्वभाव से ज्ञायक-ज्ञाता होने पर भी, वो अपने आप, बिना किसी के उपदेश के बिना, कर्ता मान लेता है। कर्ता है ही नहीं। मानता है कि मैं कर्ता हूँ। एक तो यह बड़ी भूल है।

दूसरी भूल है कि ज्ञायक का ज्ञाता होने पर भी मैं पर का ज्ञाता हूँ, ऐसा मानता है वो मिथ्याद्रष्टि है। दो भूल हैं। वो दो भूल, एक बंध अधिकार समयसार का है। उस समयसार के बंध अधिकार में आचार्य भगवान ने ये दो भूल बताया है। और अमृतचंद्र आचार्य भगवान ने एक श्लोक लिखा कि जो कोई आत्मा, आत्मार्थी होकर आत्मा के लक्ष्यपूर्वक, ज़्यादा से ज़्यादा, हिंदी में थोड़ी भूल-वूल हो तो क्षमा करना। ज़्यादा से ज़्यादा छह महीना, वो अभ्यास करे तो उसको सम्यग्दर्शन हो जाता है। तो छह महीने के अभ्यास में, छह महीने का कोर्स है। उसमें उसका दो भाग बना देना। तीन-तीन-महीने का एक कोर्स। तीन-महीने का एक कोर्स और दूसरे तीन-महीने का दूसरा कोर्स। छह महीने में पूरा कोर्स हो जाता है। एम.बी.बी.एस. और डॉक्टर कोई सी.ए. बनता है, तो पाँच साल, दस साल, पंद्रह साल लग जाता है। और आचार्य भगवाने तो करुणा करके छह महीने की मुद्दत दी है। छह महीने की मुद्दत में तीन-महीने पूर्वार्ध और तीन-महीने उत्तरार्ध। पूर्वार्ध का (कोर्स), आत्मा कर्ता है कि ज्ञाता है? ज्ञाता है कि कर्ता है? उसके लिए तीन-महीने प्रयत्न करना। और (बाकी) तीन-महीने के कोर्स के अंदर, कोर्स है उसका, एक कर्ता-कर्म अधिकार पढ़ लेना, एक, कोर्स में। (और) दूसरी ३२० गाथा पढ़ना, बस इतना ही कोर्स है। उसमें निर्णय कर लेना कि भगवान आत्मा ज्ञाता है कि कर्ता है। आहाहा!

यह निर्णय करने की बात है। सुना तो बहुत, पढ़ा भी बहुत, चर्चा भी बहुत करते हैं, मगर निर्णय के बिना जीव आगे नहीं बढ़ सकता है। निर्णय करना चाहिए और निर्णय कोई करा नहीं देवे। निर्णय अपने आप करना पड़ेगा। तो तीन-महीने का कोर्स है, अकर्ता का। आत्मा अकारक-अवेदक है। (आत्मा) ज्ञाता है, ज्ञायक है अर्थात्, अकारक है।

तो बंध अधिकार में आचार्य भगवान ने लिखा कि मैं पर को सुखी कर सकता हूँ, दुःखी कर सकता हूँ, मार करता हूँ, जिंदा (कर) सकता हूँ, ऐसे-ऐसे अभिप्रायवाली ये कर्ताबुद्धि, वो अध्यवसान, मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र अनंतदुःख का कारण है। उस ही बंध अधिकार में दूसरा भाग, दूसरा कोर्स भी उसमें ले लिया, बंध अधिकार में कि, मैं ज्ञाता हूँ और ये षट्द्रव्य मेरे ज्ञेय हैं, वो मिथ्यात्व है। अरे! करना तो मिथ्यात्व है। ठीक है! मगर मैं उसको जानता हूँ, वो मिथ्यादर्शन है। अपने को भूलकर ये (स्व)ज्ञेय को नहीं जाना और परज्ञेय को जानने गया, उसका का नाम ही अध्यवसान, मिथ्यादर्शन है। वो दो भूल हैं।

उसमें तीन महीने में कर्तापने की भूल टाल देना चाहिए। कर्ता की व्याख्या बहुत आती है शास्त्र में, आगम बहुत आती है। आत्मा बंध-मोक्ष का कर्ता है। कथंचित् बंध का कर्ता, भाव-बंध (का) और कथंचित् भाव-मोक्ष का भी कर्ता है। ऐसा आता है शास्त्र में, बहुत बात आती है। और ये कथंचित् जो कर्ता कहा, सर्वथा कर्ता नहीं लिखा है, कोई भी जगह पर। कोई भी नय लगाओ मगर कथंचित् कर्ता है, राग और वीतरागभाव का, सर्वथा कर्ता नहीं है। कोई नय से यानि भेदज्ञान का अभाव है, अज्ञान है, वहाँ तक

अज्ञानभाव से राग का कर्ता-भोक्ता होता है। मगर भेदज्ञान हुआ तो आत्मा राग का अकर्ता और वीतरागभाव का कर्ता होता है। परिणमता है तो कर्ता होता है। तो ये दोनों ही बात जो बंध-मोक्ष का कर्ता लिखा है, वो व्यवहारनय का कथन है। निश्चयनय से भगवान आत्मा, वो पारिणामिक स्वभाववाला है।

तो निष्क्रिय-शुद्धपारिणामिक: आत्मा का स्वभाव निष्क्रिय-शुद्धपारिणामिक है। तो उसमें प्रश्न आया, शिष्य ने (प्रश्न) किया कि निष्क्रिय-शुद्धपारिणामिक इति का अर्थ, उसका अर्थ क्या है? क्योंकि सारा जगत (तो) आत्मा को कर्ता ही मानता है। कर्ता की चर्चा ही करता है। भैया! क्या करें? अज्ञानभाव में राग का कर्ता और जब ज्ञान होवे तब ज्ञान का कर्ता, ऐसा शास्त्र में भी आवे। ज्ञान-क्रिया स्वभावभूत होने से (से) निषेध करने में नहीं आयी। इसलिए आत्मा कर्ता है और आत्मा का ज्ञान आत्मा का ही कर्म है। कर्ता-कर्म, व्याप्य-व्यापक एक द्रव्य में है। आहाहा! ये सब व्यवहार है। मगर कर्ता नहीं है। पर का अकर्ता कहने के लिए, आत्मा को, उपचार से, व्यवहार से कर्ता कहा जाता है। परिणमता है, इसलिए (आत्मा को) कर्ता कहा जाता है। सचमुच आत्मा अपने परिणाम का भी कर्ता नहीं है।

द्रव्यकर्म और नोकर्म और जगत का, जड़-चेतन की बात तो बहुत दूर रही। अपने अंदर, भीतर में, अज्ञानभाव से अज्ञान का कर्ता (और) ज्ञानभाव से ज्ञान का कर्ता। स्वभावग्राही ज्ञान से देखो, तो अज्ञान का भी कर्ता नहीं, ज्ञान का भी कर्ता नहीं, ऐसा निष्क्रिय परमात्मा अंदर विराजमान है। उसको द्रष्टि में लेने से सम्यग्दर्शन होता है।

उसका, प्रश्न किया शिष्य ने कि भाई! शास्त्र में तो बहुत बात आती है, कर्ता की। एक द्रव्य में कर्ता-कर्म है, व्याप्य-व्यापक है। बहुत बात आती है। (तो कहें) कि हमको मालूम है। तो आप फ़रमाओ कि आत्मा निष्क्रिय है, कर्ता नहीं है, उसका न्याय तो दे दो कुछ। तो आचार्य भगवान ने न्याय दिया कि बंध के कारण की क्रिया रागादि की (होती हो), मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र का परिणाम, आश्रव-तत्व का कर्ता, कर्ता नहीं है (आत्मा)। कि कभी कर्ता नहीं है? कि संवर होवे तब? (तो कहें) कि नहीं! क्या कहा? ये तीन महीने का कोर्स चलता है, पहले। बाद में तीन-महीने का कोर्स तो इधर में से निकलेगा।

मुमुक्षु:- ६ महीने रहना पड़ेगा?

उत्तर:- बस! ६ महीने।

मुमुक्षु:- आपको!

उत्तर:- रहना पड़ेगा नहीं। काम करना पड़ेगा। आपको क्या? इधर रहने की बात नहीं है, जयपुर में।

मुमुक्षु:- कोर्स तो पूरा जानना पड़ेगा ना!

उत्तर:- कोर्स तो अपने आप आहाहा! निरपेक्ष है आत्मा। द्रव्य सत्, गुण सत् और पर्याय सत्। निमित्त से निरपेक्ष कार्य होता है। आहाहा! ऐसा सब आयेगा, इसमें सब भरा है, माला। आहाहा! किसी की ज़रूरत नहीं है। उपादान को किसी की ज़रूरत होती नहीं है। आहाहा! निमित्त से निरपेक्ष कार्य होता है, उपादान में। उपादान के अंदर कार्य होता है, वो निमित्त से तीनकाल में होता नहीं है। अरे! निमित्त से तो

नहीं होता है, मगर त्रिकालीद्रव्य से भी कार्य होता नहीं है।

...पहले तीन-महीने का कोर्स है, अकर्ता का। मान रखा है कि मैं कर्ता हूँ, कर्ता हूँ, कर्ता हूँ। आहाहा! बड़ी भारी भूल है। हाँ! मुकुंदभाई की 'हाँ' आती है। अंदर में से 'हाँ' आवे ऐसी बात है, अपने आत्मा की बात है। विकथा की इधर मनायी है, सख्त। बाहर बोर्ड लगा है। विकथा की इधर सख्त मनायी है। आत्मकथा चलती है इधर। आहाहा!

तो आत्मा, इस आश्रव का कर्ता क्यों नहीं है? लिखा तो है, शास्त्र में। लिखा है, मगर उसका अभाव करने का तरीका बताते हैं, कि भगवान आत्मा मिथ्यादर्शन के परिणाम का कर्ता नहीं है। क्यों नहीं है? शिष्य ने प्रश्न पूछा। क्यों नहीं है? शास्त्र में तो बहुत आता है। जो कर्ता नहीं होता तो चारगति नहीं होती। आहाहा! जहाँ तक कर्ता मानता है, वहाँ तक चारगति खड़ी रहेगी। जिस क्षण मैं ज्ञाता-अकर्ता हूँ (ऐसा माना), तो चारगति का अभाव हो जायेगा। बीज तो अभी निकल जायेगा। क्रम से दो-चार भाव होवें, बाक़ी तो, आहाहा! मोक्ष हो जायेगा, उसका।

तो बंध का कारण वो जो क्रिया, राग-द्वेष-मोह का जो परिणाम, आश्रव-तत्व, उसका आत्मा कर्ता नहीं है। क्यों कर्ता नहीं है? कि तद्रूपो न भवति। उस रूप होता नहीं है। भगवान चैतन्य परमात्मा आश्रवरूप होता नहीं है, इसलिए उसका कर्ता नहीं है। अभी कर्ता की बात है। ज्ञाता की बात इसमें से, दूसरे तीन-महीने के कोर्स में आयेगी। उसका ज्ञाता भी नहीं है। वो बाद में तीन-महीने का कोर्स पहले तो चलता है ना। तीन महीने के कोर्स में पास होवे ना, तो वो (बाद का) तीन महीने का कोर्स दिमाग में आएगा। जहाँ तक मैं कर्ता हूँ वहाँ तक मैं ज्ञाता हूँ, स्व का ज्ञाता हूँ (और) पर का (ज्ञाता) नहीं (हूँ), वो बैठेगी नहीं बात।

तो आचार्य भगवान ने उत्तर दिया कि भैया! राग का कर्ता आत्मा नहीं है। क्यों नहीं कर्ता है? कि तद्रूपो न भवति। जैसे एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य से भिन्न है, इसलिए एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में व्याप्य-व्यापक होता नहीं, इसलिए कर्ता-कर्म दो द्रव्यों के बीच में होता नहीं है। ऐसे भगवान जो आत्मा निष्क्रिय परमात्मा, शुद्धात्मतत्व है, वो राग का कर्ता नहीं है। कि कभी? कि संवर उत्पन्न होवे तभी? (तो कहें) कि नहीं। अनादि से कर्ता नहीं है। ऐसा भगवान आत्मा निष्क्रिय परमात्मा अंदर (में) विराजमान है। तद्रूपो न भवति। उस रूप होता नहीं उस कारण से - गुजराती आ गई।

उस कारण से वो राग का कर्ता नहीं है। तो राग तो होता है, उसका कर्ता कौन है? कि परिणाम का कर्ता परिणाम है। कर्म से नहीं होता है राग, और जीव से भी नहीं होता है। परिणाम से राग होता है। क्षणिक-उपादान से, अशुद्ध क्षणिक-उपादान से, तत्समय की योग्यता से, उसके षट्कारक से, स्वयं, निसर्गज, ऐसा पाठ है संस्कृत का। आहाहा! निसर्गज राग उत्पन्न होता है। अद्धर से उत्पन्न होता है? कि अद्धर से उत्पन्न होता है। आत्मा के साथ आधार-आधेय संबंध है? कि नहीं है। आधार-आधेय संबंध मात्र - एक परिणाम का आधार परिणाम है। आहाहा! मेरे आधार से राग होता नहीं है। एक समय (भी) राग के (साथ) आधार-आधेय संबंध माने तो तीनोंकाल में आधार-आधेय संबंध बंध जायेगा और कभी सम्यग्दर्शन होनेवाला नहीं है।

तो एक तो जवाब दे दिया कि तद्रूपो न भवति। इसलिए राग का कर्ता आत्मा नहीं है, अकर्ता है। अकर्ता का पाठ चलता है ना। तीन-महीने का कोर्स, अकर्ता आत्मा। आहाहा! ये फ़ैक्टरी का कर्ता नहीं है। पाटनी जी साहब! आहाहा! दूसरे शिष्य ने प्रश्न किया (कि) अच्छा! राग का कर्ता न हो तो न हो। ठीक है! हमको इष्ट है। क्योंकि राग का कर्ता मानने से तो दुःख ही, दुःख ही आयेगा। मगर अपने को तो काम सुख का है। मोक्ष का काम है। तो मोक्ष का जो कारण मोक्षमार्ग, उसको तो करना चाहिए ना? करना चाहिए। आहाहा! स्वयं होता है उसको कौन करे? और नहीं होवे, उसको कौन करे? तेरी द्रष्टि में द्रव्यस्वभाव आया नहीं है। पर्याय पर द्रष्टि है तेरी।

तो शिष्य फरमाकर कहते हैं, विनयपूर्वक कि हमको कारण दो। मोक्षमार्ग निश्चय-रत्नत्रय का परिणाम, व्यवहार-रत्नत्रय का परिणाम तो पहले में गया। पहले पाठ में, राग में। आहाहा! व्यवहार के पक्षवाले को तो ऐसा लगे कि एकांत हो जायेगा, एकांत हो जायेगा। बैठता नहीं है उसको। क्या करें? उसकी योग्यता नहीं है। बाकी परमसत्य है, आचार्य भगवान का कथन है। किसी के घर की बात नहीं है। समयसार की बात है।

मोक्षमार्ग का कर्ता है कि नहीं आत्मा? निर्मल पर्याय, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम का कर्ता नहीं है, आत्मा। क्यों कर्ता नहीं है? कि तद्रूपो न भवति। उस रूप होता (नहीं है)। परमपारिणामिकभाव, ये उपशमरूप होता नहीं है, क्षयोपशमरूप होता नहीं है, क्षायिकरूप होता नहीं है। द्रव्य में परमपारिणामिकभाव तन्मय है और पर्याय में उपशमभाव तन्मय है। कोई पर्याय में क्षयोपशमभाव तन्मय है, कोई पर्याय में क्षायिकभाव तन्मय है। मगर भगवान आत्मा पारिणामिकभाव लक्षणवाला, वो कोई पर्याय तन्मय होता नहीं है। इसलिए आत्मा वो मोक्षमार्ग का कर्ता नहीं है। ज्ञाता नहीं है, वो इसमें आयेगा। हों! अभी तो कर्ता नहीं है। एक बात बैठे तो निहाल हो जावे। आहाहा!

तो कहते हैं, भगवान! कि तू ज्ञाता है, कर्ता नहीं है। नक्की कर ले, तो तेरा काम आधा तो बन जायेगा। अभी आधा काम बाकी है, वो भी बननेवाला है। बन जायेगा, विश्वास रखना। आहाहा! काल पका है तेरा! पक गया है काल! तो अमृतचंद्र आचार्य भगवान का श्लोक आया और उसके ऊपर व्याख्यान भी गुरुदेव ने दिया। आहाहा! ये समझन का पिंड है आत्मा तो, ज्ञान का पिंड है। कर्ता-वर्ता नहीं है। आत्मा ज्ञानस्वभावी है, अनादि-अनंत ज्ञानस्वभावी है। तो कर्ता का भूत भगा दे तू अभी कर्ता नहीं है, तू ज्ञाता है। केवल ज्ञाता है।

कि साहब! स्याद्वाद से तो ज़रा ऐसा लगता है कि कथंचित् ज्ञाता है और कथंचित् कर्ता है। ऐसा हमको लगता है। भैया! चक्षु है ना चक्षु, ये दृश्यपदार्थ को देखती है भले! मगर कथंचित् कर्ता-भोक्ता चक्षु में लागू पड़ता नहीं है। जो दृष्टांत में लागू नहीं पड़ता है, तो सिद्धांत में तो कहाँ से लागू पड़े? आहाहा! ज्ञान आँख है तेरी। आँख ज्ञान है। जानना, जानना, जानना, जानना।

आत्मा का स्वभाव ज्ञान और ज्ञान का स्वभाव आत्मा को जानना। यह दूसरा पाठ आनेवाला है ना, उसका नमूना आ जाता है। नमूना, सैम्पल (sample) थोड़ा। आत्मा का स्वभाव ज्ञान और ज्ञान का स्वभाव आत्मा को जानना। पर को जानना नहीं। अच्छा! पर को तो जानना तो नहीं मगर स्व-पर को जानना? वो

जल्दी हा नहीं आता है। ख्याल है सब, ख्याल है। सब आएगा अभी दूसरे भाग में आयेगा। आहाहा! साध की सिद्धि तो स्वप्रकाशक ज्ञान द्वारा होती है। और कोई रास्ता है नहीं।

तो आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि तू अकारक-अवेदक ज्ञाता है। कथंचित् कर्ता और कथंचित् ज्ञाता। यहाँ-वहाँ कथंचित् मत लगाओ, आहाहा! जहाँ घटे (लग सके) वहाँ लगाओ। जहाँ नहीं घटे (नहीं लग सके), वहाँ मत लगाओ। आहाहा! ऐसी बात अपूर्व, ये पूर्वार्ध में अकर्ता की बात (आती है)। कर्ता-कर्म अधिकार स्पेशल है, जो कुंदकुंद भगवान की देन है। कोई दिगम्बर शास्त्रों में ऐसा स्पेशल अधिकार नहीं है। कर्ता-कर्म की सब बात है, सब शास्त्र में, दिगम्बर शास्त्र में (है)। मगर स्पेशल अधिकार, कर्ता-कर्म (अधिकार) तो इसमें (समयसार में) आया है। और (इसकी के ऊपर) ३२० गाथा कलश चढ़ा दिया। कर्ता-कर्म अधिकार (के) ऊपर सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में, आत्मा बंध-मोक्ष का कर्ता नहीं है (ऐसा कहा है)। आहाहा! ज्ञाता ही है। जाननेवाला है। जो जाननेवाला है, वो करनेवाला नहीं है।

'करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने वो जाननहारा।' 'करे कोई' ऐसा आता है ना? मुझे नहीं आता। 'जाणे सो कर्ता नहीं होई। कर्ता सो जाणे नहीं कोई।'

अरे! कोई? ये क्या कह दिया? कथंचित् रखो। अरे भैया! यहाँ-वहाँ तुम कथंचित् मत लगाओ। आहाहा! मेरे पिता सर्वथा पिता हैं कि कथंचित् हैं? बोल! साहब! वो तो जीभ उपड़े नहीं (बोल सके नहीं)। तो तेरे को यदि अनुभव करना है, तो पहले सर्वथा में आ जा। आत्मानुभव के बाद कथंचित् का जन्म होता है। आत्मानुभव के पहले कथंचित् (का) जन्म नहीं होता है।

एक देवसेनाचार्य का नयचक्र है। वो गुरुदेव की हाज़री में उसका दो पेज का अनुवाद करने का भाव आया। और बोहोत जगा (स्थान) पर में तपास (जाँच) किया मगर हमको संतोष नहीं हुआ। पंडित जी को काम सौंपा। उसने (पंडित जी ने) अनुवाद करके दिया। मेरे को बहुत संतोष हुआ।

देवसेनाचार्य हो गए १००० साल पहले, भावलिंगी संता। उन्होंने लिखा है कि भगवान आत्मा में स्याद्वाद का अभाव है। क्या कहा? भगवान आत्मा में स्याद्वाद यानि कथंचित् (का अभाव है)। आत्मा में, ख्याल रखना हो। त्रिकालीद्रव्य की बात चलती है। आत्मा का जो त्रिकालीस्वभाव है, उसमें स्याद्वाद का अभाव है, मगर आत्मानुभव में स्याद्वाद का सद्भाव है। समय एक है। क्या कहा? आहाहा! ऐसा लिखा है। पुस्तक लेकर पढ़ो। नयचक्र तो निकली है, नागपुर से। एक भाई, कौन पंडित? राकेश? राकेश पंडित ने बाहर निकाला है पुस्तक (शास्त्र)। यहाँ शायद मिलता होगा।

मुमुक्षु:- राकेश भी हैं और किताब भी है।

उत्तर:- राकेश भी आया है। अच्छा! किताब भी है (और) राकेश भी है। राकेश भी है, अनुवाद करनेवाला ये किताब कि और राकेश का गुरु भी इधर है। वो कहते थे, हमारा गुरु वो है। वो बोलते थे। उनकी कृपा से हमने सीखा है, सब पढ़ा है। ऐसे नरम तो होते हैं ना, सभी विद्यार्थी, सज्जन उपकार को भूलता नहीं (है)। आहाहा! सज्जन हो ना, उसने किसी के पास कुछ भी सिखा हो ना (तो भूलता नहीं)। आहाहा! सज्जन होई!

इस तरह से आचार्य भगवान ने करुणा करके समयसार लिखा है, उसका कर्ता-कर्म अधिकार। ..

ज्ञानमात्र भाव यानि ज्ञानस्वरूपी आत्मा। ज्ञानमात्र भाव अर्थात् ये ज्ञानस्वभावी आत्मा। ज्ञान के अंदर अनंतगुण गर्भित, ऑटोमेटिक (automatic), अविनाभाव आ जाते हैं। ज्ञान की प्रधानता से कथन चलता है। **ज्ञानमात्र भाव स्वयं ही**, अपने आप। स्वयं, अकेला स्वयं नहीं। स्वयं ही। आहाहा! किसी की अपेक्षा बिना, शास्त्र की अपेक्षा बिना, स्वभाव से ही ज्ञानरूप है आत्मा। कौन से नय से ज्ञानरूप है? कि नय की ज़रूरत नहीं है, स्वभाव में। स्वभाव में नय की ज़रूरत नहीं है। समझाने लिए ज़रूर है नय, मगर अनुभव के लिए नय की ज़रूरत होती नहीं।

स्वभाव से ज्ञानमात्र आत्मा है। आहाहा! कि ज्ञानावरणीयकर्म का उदय, उपशम, क्षय, ये कुछ भी लागू पड़ता नहीं है। आत्मा स्वयं, स्वयमेव, अपने आप ही। सम्यक्एकांत किया, आहाहा! 'ही'। एक भाईसाहब ने शुरू (में) लिखा है ना, उसमें 'ही' और 'भी' की बहुत चर्चा लिखी है। 'ही' और 'भी' की चर्चा, बहुत चर्चा अच्छी (है)। हमको अच्छी लगी। हमको अच्छी लगी थी। हिन्दी में नहीं आता। गमी थी, पसंद आई थी। अच्छी लगी थी। आहाहा!

'ही' और 'भी'। तो 'ही' सम्यक्एकांत का द्योतक है। मिथ्याएकांत का द्योतक बिल्कुल नहीं है। आहाहा! सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत हो जाता है, वो नक्की बात है। अनेकांत का तीन प्रकार है। अनेकांत का तीन प्रकार है। अनेकांत का (जो) दो प्रकार है, वो भेदज्ञान-परख है। और तीसरा जो अनेकांत का प्रकार है, वो अनुभव में अनंतगुण, अनंत-पर्याय, अनंत अपेक्षित-धर्म एक समय में जानने में आते हैं। वो प्रमाणरूप अनेकांत, वो नय का फल, भेदज्ञान का फल है।

तो तीन प्रकार के अनेकांत की व्याख्या ऐसी है, शॉर्ट में कहता हूँ मैं। एक तो स्व-चतुष्टय में पर-चतुष्टय की नास्ति है। यानि प्रमाण के बाहर जाना नहीं। आहाहा! वो आयी है कि नहीं? नहीं आयी? अच्छा! याद आया। स्व-चतुष्टय (में) पर-चतुष्टय की नास्ति है। भेदज्ञान-परख है, भाषा-परख नहीं है। भाषा का काम नहीं है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव मेरा, अनन्या द्रव्य-गुण-पर्याय, मेरे में, मेरे में हैं। देह-मन-वाणी-कर्म, लोकालोक (की), मेरे में नास्ति है। तो मेरा नहीं है, आ जाता है, स्वयं। जो मेरे में उसकी नास्ति है, वो मेरी चीज़ होती नहीं है। यशपाल जी! भेदज्ञान है। प्रमाण में भी भेदज्ञान। आहाहा! वो प्रमाण का विषय। प्रमाण दो द्रव्यों को जुदा कर देता है। प्रमाण-ज्ञान दो द्रव्यों को जुदा करता है। स्व-चतुष्टय में पर-चतुष्टय की नास्ति है। आहाहा! मगर चौबीसों घंटे उपयोग राग से रंगा हुआ है, उसको मालूम नहीं पड़ता है कि क्या स्व-चतुष्टय में पर-चतुष्टय की नास्ति है। शब्द भी नया लगे किसी को। आहाहा! अभ्यास करना चाहिए, आत्महित के लिए है। अपने हित के लिए है।

तो स्व-चतुष्टय यानि अपना द्रव्य, अपना क्षेत्र, अपना काल, अपना भाव। द्रव्य-अनंतगुणों का पिंड, क्षेत्र-प्रदेश - असंख्यात प्रदेशी, स्वकाल पर्याय, स्वभाव-गुण अंदर में हैं, विराजमान। ऐसे सारा पदार्थ, स्वपदार्थरूप से हूँ और परपदार्थरूप से नहीं हूँ। परपदार्थ के साथ कोई मेरा नाता, संबंध नहीं है। कर्ता-कर्म संबंध नहीं, निमित्त-नैमित्तिक संबंध नहीं और ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध भी पर के साथ नहीं है।

शांति से सुनना सब आ जायेगा इसमें। आहाहा! तो पहले जो प्रमाणरूप भेदज्ञान है, वो भेदज्ञान-परख है। भेदज्ञान उसमें होता है। पर से आत्मा भिन्न हो जाता है। पर के अंदर ममत्व छूट जाता है। कर्ता-

कर्म संबंध की भ्राँति निकल जाती है।

दूसरा एक ये जो अनेकांत, भेदज्ञान-परख। पहला शब्द और दूसरा अंदर में। अंदर में, अंदर आओ कि मैं द्रव्यस्वरूप हूँ और पर्यायस्वरूप नहीं हूँ। प्रमत्त-अप्रमत्त की मेरे में नास्ति है। वो भेदज्ञान-परख है। वो भेदज्ञान करने से आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है। पर्यायमात्र से मैं भिन्न हूँ, इसलिए मैं पर्याय का कर्ता-भोक्ता नहीं हूँ। बहुत उसमें विस्तार है, ये तो शॉर्ट में कहता हूँ।

तो उसका फल क्या आया? कि आत्मा का अनुभव हो गया। कि मैं ज्ञायक हूँ और नाशवान जो पर्याय है, वो मेरा स्वरूप (नहीं है)। मैं अविनाशी त्रिकालीद्रव्य हूँ, तो द्रव्यद्रष्टि हो जाती है। तो वो अनुभव हुआ जब, तो अनुभव-ज्ञान है, वो ज्ञान प्रमाण हो जाता है। तो प्रमाण-ज्ञान में अनेकांत का ज्ञान हो जाता है। अनेकांत यानि अनेक अंत। अनंतधर्मात्मक सारा आत्मा, अनुभव के काल में ज्ञान में ज्ञेय हो जाता है। तो ज्ञान में ज्ञेय हुआ (तब) वो दो अनेकांत का फल तीसरा अनेकांत आ गया। आहाहा! सम्यक्अनेकांत - एकांतपूर्वक अनेकांत हो जाता है। ऐसे अनेकांत की बात भी बहुत समझने जैसी है। स्याद्वाद(रूप) है, हमारा जैनधर्म, अनेकांतरूप है, अनेकांतरूप है। आहाहा! शुद्धभाव से धर्म होवे और शुभभाव से धर्म होवे। कथंचित् आत्मा अपना कर्ता और कथंचित् पर का कर्ता, ऐसा अनेकांत होता नहीं है। वो तो अज्ञानभाव है भैया! आहाहा! अभी अनेकांत का फल अनेकांतज्ञान हो गया, सम्यग्ज्ञान हो गया।

अभी ये व्याख्यान चलेगा इसमें, क्या कहा? कि **ज्ञानमात्र भाव स्वयं ही ज्ञान है**। ये आया ना 'ही', उसका खुलासा आया। **स्वयं ही अपना ज्ञेय है**। आहाहा! स्वयं अपना ज्ञेय है। यह आत्मा स्वयं, स्वयं अपना ज्ञेय है। स्वयं अपना ज्ञेय है। हिंदी में क्या? **स्वयं ही अपना ज्ञेय है**। आहाहा! दूसरा, **और स्वयं ही अपना ज्ञाता है**। स्वयं ही अपना ज्ञाता है। ज्ञाता की व्याख्या, पर का ज्ञाता, ऐसी ज्ञाता की व्याख्या ही नहीं है। इसमें लिखा है। संस्कृत में लिखा है। क्या लिखा है? कि **स्वयं ही अपना ज्ञाता है**। ज्ञाता की व्याख्या। स्वयं अपने को जाने इसलिए आत्मा का नाम ज्ञाता है। पर को जाने, स्व-पर को जाने, इसलिए ज्ञाता है, ऐसा है ही नहीं है।

वो साध्य की सिद्धी की बात चलती है। ध्यान रखना! जानने का विषय अभी गौण कर देना। हमें पंडिताई नहीं करनी। अपने को तो आत्मा का अनुभव कर लेना है। आहाहा! **और स्वयं ही अपना ज्ञाता है**। मैं तो मेरे को जानता हूँ, पर को जानता नहीं हूँ। भेदज्ञान है उसमें। मैं मेरे को जानता हूँ और पर को जानता नहीं, इसमें इंद्रियज्ञान रुक जाता है और अतीन्द्रियज्ञान प्रगट हो जाता है। सब खुलासा आयेगा आहिस्ते-आहिस्ते। **स्वयं ही अपना ज्ञाता है - इस अर्थ का काव्य कहते हैं।** आचार्य भगवान का अभी काव्य है। बोलो काव्य बोलो-

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि

ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।

ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गुन्

ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥ ॥२७१॥

आहाहा! ऐसा संस्कृत का श्लोक अमृत जैसा है। अमृतचंद्र (आचार्य) का श्लोक अमृत जैसा है। पहली कर्ताबुद्धि छूट जाए, बाद में, पर की ज्ञाताबुद्धि छूटे और साक्षात् ज्ञायक का ज्ञाता बन जाए, अनुभव हो जाए और भव का अंत हो जाए, ऐसी ये टीका है। अद्भुत टीका है। आहाहा!

श्लोकार्थ। इसका श्लोकार्थ। **जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ** ज्ञानमात्र यानि ज्ञानस्वरूपी भगवान जो आत्मा है, वो मैं हूँ, वो मैं हूँ। आहाहा! देह मेरा और कर्म मेरा और मैं रागी हूँ? रागी है ही नहीं। है ही नहीं। कभी होगा भी नहीं। रागी नहीं होता है, आत्मा। आत्मा (रागी) नहीं होता है। अनात्मा होता है। रागी होता है (वो) अनात्मा होता है। आत्मा रागी होता नहीं। आत्मा तो ज्ञानमयी है। आहाहा! ज्ञानस्वभाव को छोड़ता नहीं है।

जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ, वह ज्ञेयों के ज्ञानमात्र ही नहीं जानना चाहिए। ज्ञेयों का जाननेवाला है, इसलिए आत्मा ज्ञाता है, ज्ञायक है, ज्ञानमात्र है, ऐसा नहीं। ये तो प्रसिद्ध बात है। ज्ञेयों को जाने, उसको ज्ञान कहने में आता है। ज्ञेयों को जानता है इसलिए आत्मा तो ज्ञान-ज्ञायक है, ऐसा भी शास्त्रों में तो आता है। मलेच्छ-भाषा में अनार्य जीवों को समझाने में आता है। मुझे सब मालूम है, व्यवहार के कथन आते हैं। व्यवहार के द्वारा निश्चय समझाने का प्रयोग करते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कोई अपूर्व बात है, आहाहा! अपूर्व-भाव से सुने तो अपूर्व-दशा भी आवे। आहाहा! होता है। नहीं होने की बात तो है ही नहीं यहाँ। हैं? हिंदी, हिन्दी अच्छा! गुजराती आ गया। अभ्यास तो गुजराती का है ना? बाक्री तो नक्की करके आया हूँ कि इधर हिंदी ही चलेगी। गुजराती आ जाती है। आहाहा!

देखो! **जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ वह ज्ञेयों के ज्ञानमात्र ही नहीं जानना चाहिए।** ज्ञेयों को जानता है, इसलिए आत्मा ज्ञाता है, ऐसा नहीं जानना चाहिए, नहीं मानना चाहिए। नहीं जानना चाहिए यानि नहीं मानना चाहिए। और जो मानता है कि (मैं) पर को जानता हूँ ना, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता है, वो मिथ्याद्रष्टि हो जाता है। कड़क है! मगर अमृत है। आहाहा!

ज्ञेय से विमुख होने का पाठ है। ज्ञेय से व्यावृत्त होकर अंदर में जाने की प्रक्रिया चलती है। **ज्ञानमात्र ही नहीं जानना चाहिए।** पर को जानता है, ऐसा ज्ञाता का स्वरूप नहीं है। ऐसा नहीं जानना चाहिए, नहीं मानना चाहिए। आहाहा! तो क्या ये पर को नहीं जानता? कि आएगा, सब आएगा। सब इसमें आयेगा। शांति से, अपने पास टाइम तो है। अपने पास टाइम तो ५ तारीख तक का है ना। आहाहा!

[ज्ञेय-ज्ञान-कल्लोल-वल्गान्] (परंतु) ज्ञेयों के आकार से होनेवाले ज्ञान की कल्लोलों के रूप में परिणमित होता हुआ वह, जैसे ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित होता है, झलकता है, उसका नाम एक अपेक्षा से ज्ञेयाकार ज्ञान है। और ज्ञेय से निरपेक्ष देखो, तो वो ही ज्ञान की पर्याय का नाम ज्ञानाकार ही है। **रूप में परिणमित होता हुआ वह, [ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृमत्-वस्तुमात्रः ज्ञेयः] ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय वस्तुमात्र जानना चाहिये।** (अर्थात्) ज्ञान भी मैं, ज्ञेय भी मैं, ज्ञाता भी मैं, ये तीन धर्म हैं।

तीन धर्म का अभेद करो, तो आत्मा ही है। एक आत्मा का तीन नाम है, आत्मा तो एक ही है। भेद से तीन नाम से समझाया जाता है। बाकी वहाँ टुकड़ा नहीं होता है, अंदर में। ज्ञान इधर रहता है, ज्ञेय इधर रहता है, ज्ञाता इधर रहता है, ऐसा नहीं रहता है। एक ही स्वभाव का तीन नाम है, समझाने के लिए

बताते हैं। **ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय वस्तुमात्र जानना चाहिए। (अर्थात् स्वयं ही ज्ञान, स्वयं ही ज्ञेय)** स्वयं पर वजन है। स्वयं पर वजन है। ज्ञान परकृत नहीं होता है, क्या कहा? ज्ञान ज्ञेयकृत नहीं होता है। शास्त्रकृत नहीं होता है। वो तो ठीक! ज्ञायककृत भी नहीं है। जीवकृत भी नहीं है ज्ञान।

क्या कहा? एक समय की जो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है ना? वो सत्-अहेतुक है। ओहोहो! युगल जी साहब ने चर्चा की थी वहाँ शिविर में सम्मोदशिखरजी। वहाँ से खबर आयी थी (कि) ज्ञान की जो पर्याय है, एक समय का सत् है और निरपेक्ष है। ऐसा, १३ नंबर की गाथा समयसार की है, उसमें लिखा है कि जो नवतत्व का जो परिणाम है, उसे तू भूतार्थनय से जाना। अभूतार्थनय से तो जाना अनंतकाल से कि आत्मा कर्ता है, मगर भूतार्थनय से जान कि स्वयंकृत है। जीवकृत भी नहीं है और ज्ञेयकृत भी नहीं है। पहले निश्चय समझ लो। आहाहा!

सूक्ष्म है बाता। प्रोफेसर साहब ज़रा सूक्ष्म है। फिर से। क्या कहा? कि जो ज्ञान की पर्याय जो प्रगट होती है, वो सत्-अहेतुक है और क्षणिक-उपादान है। वो क्षणिक-उपादान है, तो निमित्त की अपेक्षा उसमें आती नहीं है। नैमित्तिक से देखो तो निमित्त की अपेक्षा आती है। मगर वो तो स्वयं क्षणिक-उपादान, सत्-अहेतुक है। उसका स्वकाल है, तब पर्याय स्वयं प्रगट होती है। आहाहा! अपने कर्ता-कर्म षट्कारक से प्रगट हो जाती है, वो निरपेक्ष है। और सत् को देखो तो ज्ञेय से भी नहीं है और जीव से भी नहीं है। जीव तो अनादि से था, क्यों ज्ञान प्रगट नहीं हुआ (फिर)? कर ले फिर ज्ञान को प्रगट। नहीं (जीव) ज्ञान को प्रगट नहीं करता। हाँ! स्वयंकृत है। ज्ञान जब प्रगट होता है, तब उसका पर्याय का लक्ष्य आत्मा पर है, तो आत्मा ने ज्ञान किया, आत्मा के आश्रय से हुआ, ऐसा कहा जाता है, मगर ऐसा मानना नहीं। यह अपूर्व बात है। आहाहा! कर्ताबुद्धि छूट जाए और ज्ञायक की द्रष्टि हो जाए, ऐसी बात है।

(अर्थात् स्वयं ही ज्ञान, स्वयं ही ज्ञेय और स्वयं ही ज्ञाता-इस प्रकार ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप तीनों भावयुक्त वस्तुमात्र जानना चाहिए)। द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तंसत्। आहाहा! ध्येयपूर्वक ज्ञेय होता है। क्या कहा? यह ध्येय नहीं है। वो सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ है ना? उत्पादव्ययध्रुवयुक्तंसत् है ना? गुणपर्यायवद्द्रव्यम् है ना? है, है। मगर ज्ञेय है, ध्येय नहीं है। ध्येय इसमें छुपा है। मगर स्वयं वो ध्येय बनता नहीं है। आहाहा! परिणामी में अपरिणामी छुपा है। ज्ञेय में ध्येय छुपा है।

ज्ञेय में तो द्रव्य-गुण-पर्याय सब आ गया। सामान्य-विशेष सब आ गया। तो ध्येयपूर्वक ज्ञेय होता है। इसका अर्थ क्या है? कि जब ध्यान की पर्याय ध्येय तरफ़ झुकती है, तो वो अभेद होकर ध्याता हो जाती है। ध्येय-ध्यान-ध्याता, ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञाता। भेद दिखता नहीं (है)। इस तरह से ध्येय का ध्यान होता है, तो ध्याता हो जाता है। ऐसे ज्ञायक का आश्रयभूत ज्ञेय बनता है, तब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता अभेद हो जाता है, अनुभव के काल में, पर्याय से सहित। वो पर्याय से सहित (है)। कथंचित् सहित और कथंचित् रहित (है)। (लेकिन) दृष्टि अपेक्षा से सर्वथा रहित। निर्मल पर्याय, द्रव्य की अपेक्षा से सर्वथा रहित और ज्ञान की अपेक्षा से कथंचित् सहित और कथंचित् रहित। ऐसी अंदर की रमत है, सब। आहाहा!

तो ध्येयपूर्वक ज्ञेय होता ही है। अकेला ध्येय से काम नहीं बनेगा और ज्ञेय के पक्ष से भी ज्ञान काम बनेगा नहीं। आहाहा! ऐसी अपूर्व चीज़ है। सामान्य के ऊपर द्रष्टि पड़ती है, तो सामान्य-विशेषात्मक पूरा

आत्मा का पदार्थ, ज्ञान में ज्ञेय बन जाता है, एक समय में। ध्येय और ज्ञेय एक समय में होता है। कथन की पद्धति दो प्रकार से, यह क्रमिक कहा जाता है। मगर अनुभव के काल में तो ध्येय और ज्ञेय एक समय में बन जाता है। सामान्य-स्वभाव ध्येय है और सामान्य को प्रसिद्ध करनेवाली ज्ञान की पर्याय, अभेद होकर, वो भी आत्मा बन जाती है। वो पर्याय ही रहती नहीं है। पर्याय होने पर भी पर्याय नहीं रहती है और अभेद होने पर भी अभेद नहीं होती है। स्पर्शती है, तो भी नहीं स्पर्शती है। ऐसी अंदर की रमत है सब। आहाहा!

ज्ञेय और स्वयं ही ज्ञाता-इस प्रकार ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप तीनों भावयुक्त वस्तुमात्र जानना चाहिए। भावार्थ। पंडितजी का भावार्थ। जयचंद पंडितजी का ये भावार्थ। उसके ऊपर बाद में व्याख्यान आएगा, गुरुदेव का।

भावार्थ:- ज्ञानमात्र भाव, ज्ञात्क्रियारूप होने से ज्ञानस्वरूप है। 'होने से' लिखा है। क्या लिखा है? अनादि-अनंत। आहाहा! आत्मा में ज्ञान-क्रिया होती है। जो ज्ञान में भगवान आत्मा जानने में आता है, ऐसी ज्ञान की क्रिया होती है हो। आबाल-गोपाल सबको भगवान आत्मा जानने, अंदर में जानने में आता है, ऐसा उपयोग लक्षण प्रगट होता है, प्रत्येक जीव को, प्रत्येक समय। भव्य हो या अभव्य हो। **ज्ञानमात्र भाव ज्ञात्क्रियारूप होने से ज्ञानस्वरूप है। और वह स्वयं ही निम्न प्रकार से ज्ञेयरूप है।** ज्ञानरूप तो है आत्मा। अभी ज्ञेयरूप भी है। वो ज्ञेय की चर्चा अभी करते हैं। पंडित जी ज्ञेय की चर्चा करते हैं।

बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है, क्या कहा? बाह्य जो ज्ञेय है, वो अपने ज्ञान से भिन्न है। इसलिए अपना ज्ञान उसका लक्ष्य करे और ज्ञान प्रगट होवे, ऐसा ज्ञान का स्वभाव नहीं है। उसके लक्ष्य के बिना ही ज्ञान प्रगट होता है और आत्मा के लक्ष्य से (ज्ञान) प्रगट होता है, वो भी कथंचित् है। बाकी (ज्ञान) स्वयं (ही) प्रगट होता है।

बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है। ज्ञेय में अंदर तन्मय ज्ञान नहीं होता है। ज्ञान का लक्षण बनाया है, शुभचंद्र आचार्य ने, 'परलक्ष्य अभावात्, चंचलता रहितम्, अचलम ज्ञानम्' क्या कहा? आहाहा! परलक्ष्य अभावात् यानि पर के लक्ष्य से तीनकाल में ज्ञान प्रगट होता नहीं है। यानि पर के लक्ष्य से होता नहीं है और समयसार, शास्त्र, जिनवाणी के लक्ष्य से ज्ञान प्रगट होता नहीं है। अरे! अरे! ये जिनवाणी तो हमारी है। पूजनिक है, पूजनिक है। बराबर! पूजनिक है। कौन न बोलता है? मगर ज्ञान की जो प्रगटता होती है, वो (ज्ञान) पर-आश्रय से प्रगट होता है कि स्व-आश्रय से? आहाहा! ११ अंग पढ़ डालो। तो (भी) ज्ञान क्यों नहीं हुआ? पर से ज्ञान होवे तो उसको (ज्ञान) होना चाहिए, मगर होता नहीं है। निमित्त के लक्ष्य से ज्ञान प्रगट ही नहीं होता है।

परलक्ष्य अभावात्, चंचलता रहितम्, ज्ञान की व्याख्या, ज्ञान में से चंचलता नहीं होती है। मानसिकज्ञान मे, इंद्रियज्ञान में चंचलता है। आत्मिकज्ञान स्थिर है, चंचल नहीं है। आहाहा! चंचलता रहितम्, अचलम् ज्ञानम् -वो ज्ञान की पर्याय अचल है। आहाहा! हलचलवाली नहीं है, वो। स्थिर है। वो आत्मा ही हो गयी है। वो ज्ञान की पर्याय आत्मा ही हो गयी है। आहाहा!

बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है, वे ज्ञानमें प्रविष्ट नहीं होते; यानि राग ज्ञान में आता नहीं है। राग, जो

ज्ञान की पर्याय है - उपयोग, उसमें नहीं आता नहीं राग। तो ज्ञायक में तो कहाँ से आवे? उपयोग में उपयोग है, मगर उपयोग में राग नहीं है। आहाहा!

भेदज्ञान की बात चलती है। लुहाड़िया जी! आहाहा! बाहर की मगजमारी, प्रमाण के बाहर रखड़ने जैसा नहीं है। और इसने ऐसा किया, इसने ऐसा किया, इसने ऐसा किया, छोड़ दे ना माथाकूट तेरी। तू तेरा कर और भाग जा ना। तेरा करके भाग जा ना। भाग जा यानि भाग जा चला जा, मोक्ष में। मोक्ष की बात है। आहाहा!

दूसरे की बात में उसको रस पड़ता है। आत्मा की बात में उसको रस नहीं पड़ता है। रुचि नहीं (है) आत्मा की। आत्मा की रुचि हो, तो आत्मा की बात में रस आ जावे और पर की बात सुने, तो भी रस बिना सुन लेवे। क्या करें? कोई आदमी बड़ा होवे, बोले, (तो) ठीक है। रस नहीं लेता है। वो समझ जाता है कि (इसको) रस नहीं है। तो (वो) भाग जाता है। भाग जाता है, बैठता ही नहीं है। हैं? (इसको रस नहीं है तो) कैसे बैठे?

आहाहा! **प्रविष्ट नहीं होते;** राग ज्ञान में प्रवेश नहीं होता है। अपना उपयोग लक्षण है ना, उसमें राग आता नहीं है, तो ज्ञायक, जीव-तत्व में कहाँ से आवे? आहाहा! तो वो राग कहाँ रहता है? कि राग, राग में रहता है। उपयोग, उपयोग में रहता है। उपयोग, उपयोग में रहता है अथवा उपयोग में उपयोग रहता है। क्या कहा?

उपयोग नाम की पर्याय, पर्याय में रहती है। उपयोग नाम द्रव्य, द्रव्य में रहता है और उपयोगमय उपयोग है, तो अभेद होकर आत्मा बन जाता है। **प्रविष्ट नहीं होते; ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में पड़ने पर, ज्ञान ज्ञेयाकाररूप दिखाई देता है।** ज्ञेयो, ज्ञान में प्रतिभासित होते हैं, झलक होती है। जैसे दर्पण में झलक होती है ना? अग्नि की, बर्फ की झलक होती है, तो क्या अग्नि उसमें आ जाती है? बर्फ उसमें आ जाता है? ऐसा नहीं है, झलक है, ठीक है, तो वो **दिखाई, ज्ञेयाकाररूप दिखाई देता है।**

ज्ञेय के संबंध से ज्ञान को देखो तो वो ज्ञान की पर्याय, ज्ञेयाकाररूप दिखाई देती है। मगर जो ज्ञेय के लक्ष्य को छोड़कर, ज्ञायक के लक्ष्य से ज्ञान की पर्याय को देखो, तो ज्ञेयाकार है ही नहीं। ज्ञेयाकार ज्ञान तिरोभूत हो जाता है और सामान्यज्ञान का आविर्भाव प्रगट हो जाता है।

दिखाई देता है, परंतु वे ज्ञान की ही तरंगें हैं। तरंगे यानि पर्याय। ज्ञान की पर्याय हैं, ज्ञेय की पर्याय नहीं है। क्योंकि राग की पर्याय (वो) नहीं है, वो तो ज्ञान की पर्याय है। राग तो राग में है, ज्ञान तो ज्ञान में है। जुदा ही है भैया! आहाहा!

वे ज्ञान तरंगें ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं। ज्ञान की पर्याय ही जानने में आती है। ज्ञेय नहीं, ज्ञेयाकार ज्ञान नहीं, मगर ज्ञान की पर्याय जानने में आती है। तो ज्ञान की पर्याय जिसको जानने में आवे, तो (वो) ज्ञायक तक चला जायेगा। अभेद होकर अनुभव हो जायेगा। वो ज्ञान की पर्याय में टिकनेवाला नहीं है, क्योंकि ज्ञेय से विमुख हुआ, ज्ञान में आया, तो ज्ञान और ज्ञायक कथंचित् अभिन्न होने से ज्ञायक का दर्शन हो जाता है। आहाहा!

इस प्रकार स्वयं ही स्वतः जानने योग्य होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप है। यह ज्ञेय की

व्याख्या। अपना आत्मा, अपने ज्ञान में स्वयं जानने में आ रहा है। इसलिए मेरा नाम ज्ञेय है। मैं जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता है। ओहोहो! ऐसी बात अंदर की है। मैं मुझ को जानता हूँ इसलिए मैं, मेरा नाम ज्ञाता है। मैं मुझको जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता है। और मेरे में वो आत्मा जणित (जानने में आ) जाता है इसलिए मैं ही ज्ञेया मैं ही ज्ञेय और मैं ही ज्ञान और मैं ही ज्ञाता (हूँ)। बाहर जाने की बात ही नहीं है। सख्त मनायी है। लक्ष्मण रेखा है। बाहर निकलेगा तो मर जायेगा। इधर-इधर करेगा तो मरेगा। आहाहा!

और स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। इस प्रकार ज्ञानमात्र भाव ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता-इन तीनों भावों से युक्त, सहित। युक्त यानि सहित। सामान्यविशेषस्वरूप वस्तु है। सारी वस्तु, द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु है। द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु, ज्ञेय है, ध्यान का ध्येय नहीं। उपादेय तत्त्व नहीं है, ध्यान रखना। हाँ! पर्याय से सहित आया। हम तो पहले से ही कहते थे कि पर्याय से सहित ही आत्मा होता है। सोनगढ़वाले कहते हैं (कि) पर्याय से रहित, पर्याय से रहित। देखो! अमृतचंद्र आचार्य ने कहा कि पर्याय से सहित। अरे भैया! तू भूल में है। वह ज्ञेय की बात है, ध्येय की बात नहीं है।

'ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ'-इस प्रकार अनुभव करनेवाला पुरुष अनुभव करता है। बोलो! इस प्रकार अनुभव करनेवाला आत्मा, इस प्रकार अनुभव कर लेता है।